इकाई 13 देशी रियासतों में जन संघर्ष*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव

13.3 आरंभिक राजनीतिक संगठन

13.4 कांग्रेस की नीति

13.4.1 संघीय योजना

13.4.2 कांग्रेस मंत्रिमंडल

13.5 नया चरण

13.5.1 कांग्रेस की नीति में परिवर्तन

13.5.2 रियासतों में भारत छोड़ो आंदोलन

13.5.3 एकीकरण की प्रक्रिया

13.6 राजकोट में जन आंदोलन

13.6.1 लखाजीराज का शासन

13.6.2 निरंकुशता की वापसी

13.6.3 विरोध की शुरुआत

13.6.4 सत्याग्रह

13.6.5 गांधी जी द्वारा हस्तक्षेप

13.6.6 राजकोट सत्याग्रह के सबक

13.7 हैदराबाद में जन आंदोलन

13.7.1 निज़ाम का शासन

13.7.2 जागृति की शुरुआत

13.7.3 सत्याग्रह

13.7.4 द्वितीय विश्व युद्ध

13.7.5 किसान आंदोलन

13.7.6 अंतिम चरण

13.7.7 सशस्त्र प्रतिरोध तथा भारतीय सेना द्वारा हस्तक्षेप

13.8 सारांश

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपके समक्ष 1920-1947 के दौरान देशी रियासतों में उठे जन संघर्षों की एक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

* यह इकाई ई.एच.आई.-01 की इकाई 32 पर आधारित है।

- राष्ट्रीय आंदोलन तथा देशी रियासतों में उठे जन संघर्ष के बीच तुलना कर सकेंगे;
- इन राज्यों की जनता को इन संघर्षों के लिए तैयार करने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका पर विचार कर सकेंगे;
- इस विषय पर कांग्रेस की नीति में परिवर्तनों को बता सकेंगे; तथा
- इन संघर्षों की अगुवाई करने में कम्युनिस्टों की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

अंग्रेजों ने भारत में अपना आधिपत्य एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया द्वारा स्थापित किया था। औपनिवेशिक शासन से पहले की राजनीतिक ताकतें जो भारत में पहले से विद्यमान थीं, उन पर अंग्रेजों ने प्रत्यक्ष विजय प्राप्त करके, डरा धमका कर अथवा उन्हें मिलाकर यह आधिपत्य प्राप्त किया था। परिणामतः इस उपमहाद्वीप के 3/5 भाग पर प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन तथा शेष 2/5 भाग पर ''अप्रत्यक्ष सत्ता'' अर्थात अंग्रेजों की सर्वोपरि सत्ता कायम हुई। अप्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र अभी भी देशी राजाओं द्वारा परिचालित थे। सामंती भारत अथवा भारतीय रियासतों के अंतर्गत सैकड़ों रियासतें शामिल थीं, जिनमें से हैदराबाद, मैसूर, अथवा कश्मीर जैसी रियासतों का क्षेत्रफल कई यूरोपीय देशों के बराबर था। कुछ दूसरी रियासतें बहुत छोटी थीं और उनकी आबादी कुछ हजार की ही थी तथा कई हजार रियासतें इन छोटी-छोटी रियासतों के बीच की श्रेणी में आती थीं।

भारतीय रियासतों पर अप्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि सर्वोपरि सत्ता स्वीकार किए जाने के बदले में शासकों को अंग्रेजों ने बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के खतरों के विरुद्ध सुरक्षा देने का वचन दिया हुआ था। फलतः शासकों ने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए नाममात्र को भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं समझी। अधिकांश रियासतें निरंकुश थीं। शासक मनमाने ढंग से राजस्व थोपते थे। ये शासक समय-समय पर यूरोपीय देशों की यात्रा करते थे और काफी लम्बा समय वहीं व्यतीत करते थे। भारत में अपने विदेशी मेहमानों के मनोरंजन के लिए उन्हें शिकार पर ले जाते थे। इनके हरम में औरतों की संख्या निरंतर बढ़ती रहती थी। इस तमाम फिजूल खर्जी का बोझ असहाय जनता को ही सहना पड़ता था।

कुछ अपेक्षाकृत बेहतर शासकों ने अक्सर अंग्रेजों के प्रतिरोध के बावजूद प्रशासनिक और राजनीतिक सुधार लाने तथा औद्योगिक विकास को बढ़ाने का भी प्रयास किया। उन्होंने आधुनिक शिक्षा के प्रसार के भी गंभीर प्रयास किए तथा सरकार में जनता को शामिल करने की भी स्वीकृति दे दी। लेकिन इस प्रकार की रियासतों की संख्या बहुत ही कम रही। अधिकतर रियासतें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हर दृष्टि से पिछड़ी रहीं और रूढ़िवादी ढर्रे पर चलती रही। ऐसी परिस्थिति के लिए बहुत कुछ अंग्रेज ही जिम्मेदार थे, जो विशेषकर बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई शक्ति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय रियासतों की तमाम प्रतिक्रियावादी परंपराओं को यथावत बनाए रखने को तत्पर थे और उत्तरदायी सरकार बनाने की ओर कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे। दरअसल इन राजाओं की ओर से राष्ट्रीय आंदोलन को किसी प्रकार का समर्थन अंग्रेजी शासकों को असह्य था। इन रियासतों में अपने प्रतिनिधियों के द्वारा इन पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी।

13.2 राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव

फिर भी, जैसा कि अपरिहार्य था, ब्रिटिश भारत में अपनी जड़ें मजबूत करने के बाद राष्ट्रीय आंदोलन इन रियासतों के लोगों को भी प्रभावित करने लगा। राष्ट्रवादियों के

प्रजातंत्र, उत्तरदायी सरकार तथा नागरिक स्वतंत्रता (Civil liberty) से संबंधित विचारों ने तुरंत ही वहाँ की जनता को आकृष्ट किया क्योंकि उन्हें अपने दैनिक जीवन में निरंकुश शासन के दमन का सामना करना पड़ता था। सबसे पहले विचार इन रियासतों में राष्ट्रवादियों के द्वारा पहुँचे जिनमें से कुछ ब्रिटिश भारत में क्रांतिकारी घोषित होने के उपरान्त इन रियासतों में शरण ढूँढ रहे थे। लेकिन एक बार जब इस राष्ट्रीय आंदोलन ने व्यापक स्वरूप धारण कर लिया तो रियासतों के लोगों पर इसका प्रभाव अधिक हो गया। दरअसल, इन रियासतों में सर्वप्रथम स्थानीय स्तर के जन संगठन 1920 से लेकर 1922 तक चलने वाले असहयोग तथा खिलाफत आंदोलन के प्रभाव में अस्तित्व में आए।

13.3 आरंभिक राजनीतिक संगठन

सर्वप्रथम हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, काठियावाड़ की रियासतें, दक्कनी रियासतें, जामनगर, इन्दौर तथा नवानगर में प्रजा मंडलों की स्थापना हुई। इस प्रक्रिया से उभरने वाले मुख्य नेता बलबंत राय मेहता, माणिकलाल कोठारी तथा सी. आर. अभ्यंकर आदि थे। इन्हीं नेताओं की पहल पर 1927 में पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर इन रियासतों की जनता एकत्रित हुई और आगे चलकर अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन की स्थापना हुई। इस सम्मेलन के पहले अधिवेशन में ही लगभग 700 राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया।

13.4 कांग्रेस की नीति

1920 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने उस प्रस्ताव के जरिए जिसमें शासकों से पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए आग्रह किया गया था, भारतीय रियासतों के प्रति अपनी नीति की घोषणा कर दी थी। भारतीय रियासतों में राजनीतिक आंदोलन अथवा संघर्ष चलाने के प्रश्न पर कांग्रेस की नीति काफी जटिल थी। यद्यपि रियासतों में रह रहे व्यक्तियों को कांग्रेस का सदस्य होने की स्वतंत्रता थी और उसके द्वारा चलाए गए आंदोलनों में वे भाग ले सकते थे। लेकिन कांग्रेस के नाम पर रियासतों में वे राजनीतिक गतिविधियाँ आरंभ नहीं कर सकते थे। वे केवल अपनी व्यक्तिगत क्षमता अथवा स्थानीय राजनीतिक संगठनों जैसे प्रजा मंडलों आदि के सदस्य के रूप में ही ऐसा कर सकते थे। कांग्रेस के इस मत का स्पष्ट प्रत्यक्ष कारण यह था कि ये रियासतें वैधानिक दृष्टि से अपना अस्तित्व रखती थीं। रियासतों की राजनीतिक परिस्थितियों में बहुत अधिक भिन्नताएँ थीं और इसी तरह ब्रिटिश भारत तथा इन रियासतों के बीच बहुत भिन्नताएँ थीं। अतः कांग्रेस जैसी संस्था, जो अपनी राजनैतिक तथा संघर्ष पद्धति ब्रिटिश भारत की परिस्थितियों के आधार पर निर्धारित करती थी, उस आरंभिक चरण में रियासतों के राजनीतिक आंदोलनों से सीधे सम्बद्ध होने की स्थिति में नहीं थी। इसके अतिरिक्त रियासती जनता के लिए यह उचित नहीं था कि अपनी माँगें स्वीकार करवाने के लिए ब्रिटिश भारत में अधिक विकसित आंदोलनों पर निर्भर रहे। आवश्यकता इस बात की थी कि वे स्वयं अपनी शक्ति बढ़ाएँ, अपनी राजनीति चेतना विकसित करें और अपनी विशिष्ट माँगों के लिए संघर्ष क्षमता का प्रदर्शन करें। इन सीमाओं के अंतर्गत ही कांग्रेस और कांग्रेस के कार्यकर्त्ता रियासतों के आंदोलनों को विभिन्न तरीकों से सहयोग देते रहे। 1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में रियासतों के संदर्भ में संगठन की स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने बड़े जोरदार ढंग से कहा कि ''भारतीय रियासतें शेष भारत से कटकर नहीं रह सकतीं इन रियासतों के भविष्य निर्धारित करने का अधिकार इन रियासतों के निवासियों को ही है।''

यद्यपि इन रियासतों में राजनीतिक जागरूकता और राजनीतिक प्रतिरोध 1920 तथा 1930 के दशक में जोर पकड़ने लगे थे, लेकिन वास्तविक आंदोलन का प्रारंभ 1930

के उत्तरार्द्ध में ही हुआ। इसके दो परस्पर संबंधित कारण थे : पहला 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत प्रस्तावित संघीय योजना तथा दूसरा था 1937 में ब्रिटिश भारत के अधिकांश प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा सरकार बनाया जाना ।

13.4.1 संघीय योजना

संघीय योजना के अनुसार,, भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत से सीधे संवैधानिक संबंध के अंतर्गत लाया जाना था जो मौजूदा स्थिति से पृथक था जिसमें वे ब्रिटिश साम्राज्य से सीधे जुड़े थे। यह संघीय भारतीय विधायिका की स्थापना से प्राप्त किया जाना था जिसमें ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों दोनों के प्रतिनिधि शामिल होते। इस विधानमंडल में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि सामान्यतः जनता द्वारा चुने जाएँगे, जबकि रियासतों के प्रतिनिधि जो कुल सदस्यों की संख्या का एक तिहाई हिस्सा थे, इन रियासतों के शासकों द्वारा मनोनीत किए गए थे। इस पूरी योजना का उद्देश्य रियासतों के मनोनीत प्रतिनिधियों को ठोस कठपुतली के रूप में इस्तेमाल करके ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों को शक्तिहीन बनाना था। इसलिए सभी राष्ट्रवादियों ने मिलकर संघीय योजना का विरोध किया और माँग की कि रियासतों के प्रतिनिधि भी मनोनीत किए जाने के बजाए जनता द्वारा निर्वाचित किए जाएँ। स्वाभाविक रूप से इसके कारण भारतीय रियासतों में उत्तरदायी सरकार की माँग की महत्ता को महसूस किया गया था क्योंकि जब तक रियासतों में निर्वाचन के सिद्धांत लागू न हों तब तक उन्हें संघीय स्तर पर लागू नहीं किया जा सकता।

13.4.2 कांग्रेस मंत्रिमंडल

अनेक प्रांतों में कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल के गठन ने रियासतों में आंदोलनो को प्रेरणा देने का कार्य किया। ब्रिटिश भारत के कई प्रांतों में कांग्रेस के सत्ता में आने से रियासतों की जनता के अन्दर विश्वास की भावनाएँ और आकांक्षाएँ जगा दीं। इस परिस्थिति ने शासकों पर दबाव डालना शुरू किया क्योंकि कांग्रेस संगठन अब केवल एक विरोधी आंदोलन नहीं रह गया था बल्कि एक ऐसा राजनीतिक दल भी था जो सत्ता में था। उनके लिए यह परिस्थिति उस भविष्य का संकेत बन गयी थी जिससे उनको अपने क्षेत्र में जूझना था।

13.5 नया चरण

इस प्रकार रियासतों में 1938-39 के वर्षों में आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। कई रियासतों में प्रजा मंडल बन गए और राजकोट, त्रावणकोर मैसूर, हैदराबाद, पटियाला, जयपुर, कश्मीर और उड़ीसा की रियासतों में संघर्ष भड़क उठे।

13.5.1 कांग्रेस की नीति में परिवर्तन

इस नयी परिस्थिति में रियासतों के अंतर्गत आंदोलनों के प्रति कांग्रेस की नीति में स्पष्ट परिवर्तन आए। मूलगामी परिवर्तनकारी और वामपंथी पहले से ही रियासतों के आंदोलनों के प्रति स्पष्ट पहचान की माँग कर रहे थे लेकिन कांग्रेस की सोच पर निर्णायक प्रभाव रियासतों के जनवादी आंदोलनों ने डाला। यह 25 जनवरी, 1939 को गांधी जी द्वारा *टाइम्स ऑफ इंडिया* को दिए गए एक इंटरव्यू के निम्नलिखित वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है :

''मेरी दृष्टि से ऐसे समय में जबकि रियासतों की जनता जागरूक नहीं थी, हस्तक्षेप न करने की कांग्रेस की नीति कूटनीति का बेहतरीन उदाहरण थी। किंतु ऐसे समय में जबकि रियासत के लोगों में व्यापक जागरूकता आ चुकी है और लोग अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कष्टों के एक लम्बे दौर को झेलने के लिए तैयार हैं, वह नीति

कायरता की प्रतीक होगी। जिस क्षण उनमें जागरूकता आई उस क्षण से कानूनी, संवैधानिक और बनावटी सीमाएँ टूट गयीं।''

मार्च, 1939 में अपने त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें गांधी जी के उक्त विचारों को सम्मिलित किया गया :

''रियासत की जनता के बीच उभर रही महान जागरूकता कांग्रेस में ढील ला देगी अथवा उन रुकावटों को पूरी तरह खत्म कर देगी जो कांग्रेस ने स्वयं पर लगा रखी हैं। परिणामतः रियासतों की जनता के साथ कांग्रेस की पहचान निरंतर बढ़ती ही जाएगी।''

1939 में अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन के लुधियाना अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू के अध्यक्ष चुने जाने से आंदोलन को और भी प्रोत्साहन मिला और यह ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के आंदोलनों की एकता का प्रतीक बन गया।

13.5.2 रियासतों में भारत छोड़ो आंदोलन

1939 में दूसरे विश्व युद्ध के आरंभ होते ही परिस्थिति में स्पष्ट परिवर्तन आए। कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया और भारत में अंग्रेजी सरकार तथा रियासतों ने और भी दमनकारी रूप ले लिया। आंदोलन में एक ठहराव की स्थिति आ गयी जो अंततः 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के आरंभ होने से ही टूटी। पहली बार कांग्रेस ने रियासती जनता का स्वतंत्रता के लिए अखिल भारतीय संघर्ष में पूरी तरह से शामिल होने का आह्वान किया। कांग्रेस ने उतरदायी सरकार की अपनी माँग में भारत की स्वतंत्रता और रियासतों को भारतीय राष्ट्र में उसके अभिन्न अंग के रूप में शामिल किए जाने की माँग जोड़ दी। रियासती जनता के संघर्षों को औपचारिक रूप से ब्रिटिश भारत की जनता के संघर्षों के साथ जोड़ लिया गया।

13.5.3 एकीकरण की प्रक्रिया

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर सत्ता के ब्रिटिश नियंत्रण को भारतीय नियंत्रण में हस्तांतरित करने की बातचीत का दौर शुरू हुआ। ऐसी परिस्थिति में भारतीय रियासतों के भविष्य का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया। अंग्रेज सरकार का यह मानना था कि उनके भारत छोड़ने के बाद उनकी सर्वोपरि सत्ता खत्म हो जाएगी और भारतीय रियासतें वैधानिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जाएगीं। इससे उप महाद्वीप के कई टुकड़ों में बंटने की स्थिति पैदा हो सकती थी। राष्ट्रीय नेतृत्व, विशेषकर सरदार पटेल ने इस परिस्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा कूटनीतिक दबावों एवं जनवादी आंदोलनों के संयोजन द्वारा अधिकांश रियासतों को भारतीय संघ में शामिल होने पर राजी कर लिया। अधिकतर बुद्धिमान शासकों ने स्वयं ही इस तथ्य को समझ लिया कि भिन्न अस्तित्व के रूप में उनके क्षेत्रों की स्वतंत्रता यथार्थवादी विकल्प नहीं था लेकिन त्रावणकोर, जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर जैसी रियासतें अंतिम समय तक भारतीय संघ में शामिल होने से इंकार करती रहीं। अंततः केवल हैदराबाद ही ऐसी रियासत बची जो स्वतंत्र बने रहने के लिए अंत तक गंभीर प्रयास करती रही।

बोध प्रश्न-1

1) भारतीय रियासतों की जनता पर राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभिक प्रभाव क्या रहा?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय रियासतों के जनवादी आंदोलनों के प्रति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति क्या थी?

.....

.....

.....

.....

.....

3) संघीय योजना पर लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) तथा गलत (✗) का निशान लगाएँ।

i) भारतीय रियासतों द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों पर अंग्रेजों का अप्रत्यक्ष नियंत्रण था।

ii) संघीय योजना को राष्ट्रवादी नेताओं का समर्थन प्राप्त था।

iii) 1930 के दशक में देशी रियासतों के आंदोलन में तीव्रता आयी।

दो रियासतों की केस स्टडी :

अब हम दो भारतीय रियासतों में आंदोलन के स्वरूप पर गहराई से दृष्टि डालेंगे। हमने सभी रियासतों के आंदोलनों का संक्षिप्त में सारांश प्रस्तुत करने के बजाय प्रतिनिधि रियासतों के आंदोलनों को विस्तार से प्रस्तुत करने की पद्धति इसलिए अपनायी है क्योंकि इस प्रकार की पद्धति से भारतीय रियासतों में बुनियादी स्तर पर राजनीतिक गतिविधियों और राजनीतिक जागरूकता को उभारने वाली विभिन्न शक्तियों के जटिल स्वरूप को समझाने में आसानी होगी। हमने जो रियासतें चुनी हैं वे न केवल आकार की दृष्टि से बल्कि कुछ अन्य कारणों से भी प्रतिनिधि रियासतें हैं। जैसे हैदराबाद (सबसे बड़ी रियासत थी) तथा राजकोट (सबसे छोटी रियासतों में से एक) है। हैदराबाद का शासन (निज़ाम) एक मुस्लिम के हाथ में था तथा राजकोट का शासन एक हिन्दू के हाथ में। राजकोट में गांधीवादी राजनीतिक कार्यकर्ता नेतृत्व कर रहे थे और हैदराबाद में कम्युनिस्ट सामन्ती शासकों के विरुद्ध जनवादी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।

13.6 राजकोट में जन आंदोलन

राजकोट की रियासत असंख्य छोटी-छोटी रियासतों में से एक थी जो गुजरात के काठियावाड़ प्रायद्वीप में स्थित थी। इसकी कुल आबादी केवल 75,000 थी। तथापि राजकोट काफी महत्वपूर्ण रियासत थी क्योंकि राजकोट शहर पश्चिमी भारतीय रियासती एजेंसी (Western India States Agency) का मुख्यालय था, जहाँ ब्रिटिश राजनीतिक एजेंसी क्षेत्र की सभी छोटी रियासतों की निगरानी का कार्य करती थी।

13.6.1 लखाजीराज का शासन

भारतीय रियासतों में राजकोट ऐसी पहली रियासत थी जहाँ सरकार में जनता की हिस्सेदारी की शुरुआत हुई। यह जन सहभागिता राजकोट के ठाकुर साहब, लखाजीराज के प्रबुद्ध विचारों के कारण ही आरंभ हो सकी। लखाजीराज ने 1930 तक कुल बीस वर्षों के लिए रियासत पर शासन किया। 1923 में उन्होंने राजकोट प्रतिनिधि सभा की शुरुआत की। यह सभा 90 चुने हुए सदस्यों की प्रतिनिधि विधानसभा थी। जिनके सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता था। ठाकुर साहब के पास ''वीटो'' का अधिकार सुरक्षित था लेकिन लखाजीराज ने इस अधिकार का प्रयोग बिरले ही किया। इस प्रजा प्रतिनिधि सभा के पास काफी अधिकार थे। लखाजीराज ने रियासत में औद्योगिक और शैक्षणिक उन्नति को काफी प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार इस प्रबुद्ध शासक ने राष्ट्रवादी राजनीतिक गतिविधियों को विभिन्न तरीकों से प्रोत्साहित किया। 1921 में उन्होंने राजकोट के अन्दर प्रथम काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस के आयोजन की अनुमति ली जिसकी अध्यक्षता सरदार पटेल के भाई विठ्ठल भाई पटेल ने की जो बाद में केन्द्रीय विधान सभा के प्रथम भारतीय अध्यक्ष भी हुए। लखाजीराज गांधी जी के बड़े प्रशंसक थे और राजकोट के इस सपूत पर गर्व करते थे। वे अक्सर गांधी जी को अपने ''दरबार'' में बुलाते और उन्हें सिंहासन पर बिठा कर स्वयं ''दरबार'' में बैठते। जवाहरलाल नेहरू का रियासत के एक दौरे पर उन्होंने जन स्वागत किया। लखाजीराज काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस के अधिवेशनों में भी शामिल हुए। अंग्रेजों की अवज्ञा में खादी पहनी और राष्ट्रीय स्कूल के लिए भूमि दान की, यह स्कूल बाद में राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया।

13.6.2 निरंकुशता की वापसी

लखाजीराज के ये प्रगतिवादी कार्य अधिक दिनों तक न चल सके। 1930 में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र धर्मेन्द्र सिंह जी ने शासन संभाला और एक शासक के रूप में अपने पिता के बिल्कुल विपरीत विचारों वाला सिद्ध हुआ। धर्मेन्द्र सिंह जी की रुचि केवल भोग-विलास में ही थी और इस सब में उसे धूर्त दीवान वीरावाला से भी काफी प्रोत्साहन मिला जिसने सत्ता की सारी शक्ति अपने हाथ में केन्द्रित करने के लिए इस मौके का फायदा उठाया। रियासत का सारा धन फिजूल खर्ची में बहाया गया और एक समय के बाद वहाँ की वित्तीय स्थिति ऐसी हो गयी कि राजस्व प्राप्त करने के लिए चावल, माचिस, चीनी और दाल के विक्रय का अधिकार राजस्व बढ़ाने के लिए निजी व्यापारियों को दे दिया गया। कर बढ़ा दिए गए, कीमतें काफी बढ़ गई और जन प्रतिनिधि सभा समाप्त हो गयी। इन तमाम कारणों, तथा विशेषकर लखाजीराज के शासन और वर्तमान शासन के बीच इतने बड़े अन्तर के कारण लोगों के बीच असंतोष और अप्रसन्नता व्याप्त हो गयी।

13.6.3 विरोध की शुरुआत

काठियावाड़ क्षेत्र में कई वर्षों से सक्रिय विभिन्न राजनीतिक गुटों ने संघर्ष के लिए आधार भी तैयार कर रखा था। लेकिन इन वर्षों में जिस समूह ने नेतृत्वकारी स्थिति प्राप्त की उसके सदस्य गांधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ता थे और उनके मुख्य नेता यू. एन. धेबार थे।

1936 में एक गांधीवादी कार्यकर्ता जेठालाल जोशी द्वारा संगठित मजदूर यूनियन के तत्वाधान में रियासती सूती मिल में 800 मजदूरों ने हड़ताल की, हड़ताल 21 दिन चली और मजदूरों की काम करने की बेहतर परिस्थितियों की माँग को दरबार ने स्वीकार किया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर मार्च, 1937 में जेठालाल जोशी तथा यू. एन. धेबार ने काठियावाड़ राजकीय परिषद (राजनीतिक कांफ्रेस) की मीटिंग आयोजित की

जो आठ वर्षों के दौरान पहली बार हुई थी। इस कांफ्रेस में भाग लेने वाले पंद्रह हजार लोगों ने उत्तरदायी सरकार की माँग की और करों को घटाने तथा रियासतों खर्चों में कमी की भी माँग की।

रियासत के शासक ने न तो परिषद से बातचीत आरंभ की और न ही माँगें स्वीकार कीं। अतः परिषद ने अगस्त, 1938 में जुआ खेलने के विरोध में, जिसके अधिकार भी गोकुलाष्टमी मेले को बेच दिये गए थे, संघर्ष छेड़ दिया। प्रशासन की दमन की योजना थी, विरोधी प्रदर्शनकारियों पर पहले एजेंसी की पुलिस ने और फिर रियासत की पुलिस ने लाठियाँ बरसाई। इसकी प्रतिक्रिया तुरन्त देखने में आयी। पूर्ण हड़ताल की घोषणा कर दी गयी और 5 सितम्बर को सरदार पटेल की अध्यक्षता में परिषद का अधिवेशन हुआ। पटेल दीवान वीरावाला से भी मिले और जनता की माँगें प्रस्तुत की, जिसमें उत्तरदायी सरकार के लिए प्रस्ताव तैयार करने की एक कमेटी, प्रतिनिधि सभा के लिए नये चुनाव, भू-राजस्व में 15 प्रतिशत की कमी, सभी प्रकार की इजारेदारी समाप्त करना तथा सरकारी खजाने पर शासक के अधिकार को सीमित करने की माँगें शामिल थीं। दरबार ने इस माँगों में रुचि दिखाने के बजाए ब्रिटिश रेजीडेंट से दीवान के रूप में एक अंग्रेज अफसर नियुक्त करने का अनुरोध किया जिससे आंदोलन के प्रभावपूर्ण तरीके से निपटा जा सके। ब्रिटिश रेजीडेंट ने कैडेल को दीवान बनाकर भेज दिया। दीवान वीरावाला जिसने सारी योजना तैयार की थी, स्वयं सत्ता का निजी सलाहकार बन गया और अप्रत्यक्ष रूप में सक्रिय बना रहा।

13.6.4 सत्याग्रह

प्रशासन का सख्त रवैया देखते हुए प्रतिरोध को और तेज कर दिया गया जो अंततः व्यापक पैमाने के सत्याग्रह में परिवर्तित हो गया। सूती मिल में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। छात्रों ने भी हड़ताल आरंभ कर दी। सारे माल, चाहे वह रियासत द्वारा उत्पादित हो या इजारेदारी के अंतर्गत बेचे जाने वाला माल, का बहिष्कार किया गया। इसमें कपड़ा और बिजली भी शामिल थे। भू-राजस्व अदा नहीं किया गया तथा स्टेट बैंक में जमा राशि वापस ली जाने लगी। संक्षेप में, रियासत की आय के सारे स्रोत बन्द हो गए। बम्बई, ब्रिटिश गुजरात तथा राजकोट के बाहर काठियावाड़ के अन्य क्षेत्रों से कार्यकर्त्ता राजकोट में इकट्ठे होने लगे। आंदोलन का संगठन बहुत विकसित हुआ। प्रत्येक नेता की गिरफ्तारी के बाद उसकी जगह कोई दूसरा ले लेता था और इसके लिए पूर्व निर्धारित गुप्त श्रृंखला का सहारा लिया गया था। जिसके अनुसार, कार्यकर्ता अपने राजकोट पहुँचने की तारीख तथा प्रबंध की सूचना सांकेतिक संख्याओं द्वारा अखबारों में प्रकाशित करा देते थे। यद्यपि सरदार पटेल राजकोट में हर समय उपस्थित नहीं रहते थे लेकिन टेलीफोन पर हर रोज शाम के समय सूचना प्राप्त कर लेते थे।

ब्रिटिश सरकार राजकोट में किसी भी ऐसी संभावना से भयभीत थी जिसे कांग्रेस की सफलता कहा जा सके। वे नहीं चाहते थे कि दरबार, प्रतिरोधी आंदोलन के साथ किसी प्रकार का समझौता करे। उन्हें डर था कि इससे आंदोलन और फैल जाएगा तथा कांग्रेस का प्रभाव भी बढ़ जाएगा। लेकिन अत्यधिक सफल सत्याग्रह के पूर्ण दबाव में आकर दरबार ने 26 दिसम्बर, 1938 को सरदार पटेल के साथ समझौता किया जिसके फलस्वरूप सत्याग्रह वापस ले लिया गया और सभी कैदी रिहा कर दिए गए। समझौते का सबसे महत्वपूर्ण भाग वह था जिसमें दरबार ने दस राज्याधिकारियों की समिति नियुक्ति करने का वचन दिया। दरबार को अधिकतम संभावित शक्तियाँ प्रदान करने के लिए सुधारों की एक योजना तैयार करना इस समिति का काम था। यह भी समझौता था कि समिति के दस सदस्यों में से सात सदस्य सरदार पटेल द्वारा मनोनीत किए जायेंगे।

अंग्रेज सरकार जो मूल रूप से ही समझौते के विरुद्ध थी, अब तुरंत क्रियाशील हो गयी। वाइसरॉय और रियासत के सेक्रेटरी से परामर्श करने के बाद सरदार पटेल द्वारा

मनोनीत किए जाने वाले सात सदस्यों की सूची स्वीकार न करने के लिए ठाकुर साहब को बाध्य किया गया। इसके विपरीत ब्रिटिश रेजीडेंट की सहायता से एक अन्य सूची इसके स्थान पर तैयार की गयी। सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित सूची अस्वीकार करने के पीछे जो आम कारण बताया गया काफी महत्वपूर्ण था। इसके अनुसार,, सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित सूची इसीलिए स्वीकार नहीं की जा सकती थी क्योंकि यह स्पष्ट रूप में साम्प्रदायिक और जातिगत विभाजन का प्रयास था, इस सूची में केवल ब्राह्मण और बनियों के नाम थे तथा राजपूत, मुस्लिम तथा दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं था।

26 जनवरी, 1939 को सत्याग्रह फिर से आरंभ कर दिया गया। शासन ने आंदोलन का दमन करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी परंतु इस दमन के विरोध में देशभर से प्रतिक्रियाएँ आने लगीं। गांधी जी की पत्नी कस्तूरबा जो राजकोट में ही पली बढ़ी थी, इससे इतने अधिक प्रभावित हुईं कि अपनी बढ़ती हुई उम्र तथा खराब स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए उन्होंने राजकोट जाने का निश्चय कर लिया। उनके वहाँ पहुँचने पर उन्हें तथा उनकी सहयोगी सरदार पटेल की बेटी मनीबेन को राजकोट शहर से बाहर एक गाँव में रोक लिया गया। इसके बाद गांधी जी ने स्वयं ही राजकोट जाने का निश्चय किया। दरबार द्वारा औपचारिक समझौते का उल्लंघन किए जाने के मुद्दे को पहले उन्होंने काफी गंभीरता से लिया। रियासत के साथ तथा ठाकुर साहब के परिवार के साथ अपने और अपने परिवार के नजदीकी संबंधों को देखते हुए उन्होंने निजी रूप में हस्तक्षेप करना अपना दायित्व समझा।

दरबार को निःसंदेह अंग्रेजों द्वारा भड़काया गया और वह अपने फैसले पर अड़ा रहा। अंततः गांधी जी ने घोषणा की कि यदि तीन मार्च तक दरबार ने इस समझौते का सम्मान नहीं किया तो वे अनिश्चितकालीन अनशन पर चले जाएँगे। दरबार की ओर से कोई आश्वासन नहीं दिया गया और इस प्रकार अनशन की शुरुआत हो गयी।

13.6.5 गांधी जी द्वारा हस्तक्षेप

अपेक्षा के अनुरूप ही गांधी जी का अनशन तुरंत देशव्यापी विरोध का चिह्न बन गया। टेलिग्राम के द्वारा वाइसरॉय पर हस्तक्षेप करने के लिए दबाव डाला जाने लगा, कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा देने की धमकियाँ दी। हड़तालें शुरू हो गयीं तथा विधानमंडल स्थागित कर दिए गए। गांधी जी ने स्वयं वाइसरॉय से अनुरोध किया कि वे हस्तक्षेप करके ठाकुर साहब को समझौते पर जमे रहने के लिए राजी करें। सात मार्च को वाइसरॉय ने भारत के मुख्य न्यायाधीश सर मॉरिस गॉयर को मध्यस्थ बनने और यह निर्णय करने के लिए आदेश दिया कि क्या सचमुच ठाकुर ने समझौते का उल्लंघन किया है। इसके बाद ही गांधी जी ने अपना अनशन तोड़ा।

मुख्य न्यायाधीश ने 3 अप्रैल, 1939 को दिए गए अपने निर्णय में सरदार पटेल के पक्ष का समर्थन किया लेकिन वीरावाला के उकसाने पर दरबार साम्प्रदायिकता और जातिवाद को प्रोत्साहन देता रहा तथा मुस्लिम और दलित वर्गों को भड़काते हुए इन्हें अपनी माँगें प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित करता रहा और उनका इस तरह इस्तेमाल करता रहा कि वे समझौते को मानने से इंकार कर दें। अचानक परिस्थिति बिगड़ने लगी, विशेषकर जिन्ना और अम्बेडकर द्वारा मुस्लिमों और दलित वर्गों के लिए भिन्न प्रतिनिधित्व की माँग के साथ स्थिति और भी बदतर हो गयी तथा गांधी जी की प्रार्थना सभाओं पर विरोधी प्रदर्शन होने लगे। चूँकि कांग्रेस की सफलता से अंग्रेज सरकार को फायदा तो कुछ होना नहीं था, केवल उसे नुकसान ही हो सकता था, उसने किसी भी रूप में अपना प्रभाव इस्तेमाल करने से इंकार कर दिया।

यहाँ पर गांधी जी ने स्वयं को परिस्थिति से अलग कर लिया तथा यह घोषणा की कि वे ठाकुर साहब को समझौते से मुक्त कर रहे हैं। उन्होंने मुख्य न्यायाधीश तथा वाइसरॉय

से उनका समय बर्बाद करने के लिए क्षमा माँगी। उन्होंने अपने विरोधियों से भी क्षमा माँगी और ब्रिटिश भारत में वापस आ गए। अपने विरोधियों का हृदय परिवर्तन करने के प्रयास में उन्हें जो असफलता मिली, उसके कारणों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने महसूस किया कि दरबार पर दबाव डालने के लिए सर्वोपरि सत्ता के अधिकारों का इस्तेमाल करने का प्रयास करना उचित नहीं था, उन्हें ठाकुर साहब और वीरावाला के हृदय परिवर्तन के लिए कष्ट झेलने की स्वयं की शक्ति पर ही आश्रित होना चाहिए था।

13.6.6 राजकोट सत्याग्रह के सबक

अपने तमाम उतार चढ़ाव के साथ राजकोट सत्याग्रह ने देशी रियासतों की परिस्थितियों की जटिलता को स्पष्ट कर दिया। इन रियासतों में सर्वोपरि सत्ता अपने हित में रियासतों में हस्तक्षेप के लिए सदैव तैयार रहती थी लेकिन जब कभी भी विपक्ष हस्तक्षेप की माँग करता था तो रियासत की वैध स्वतंत्रता के नाम पर हस्तक्षेप से इंकार कर दिया जाता था। ब्रिटिश भारत में यह बहाना इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था, इसलिए मुकाबला भिन्न तरह का होता था। परिस्थिति की इस भिन्नता के कारण एक ही संघर्ष पद्धति जब ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों की भिन्न राजनीतिक परिस्थितियों में प्रयोग में लायी जाती थी तो परिणाम भी भिन्न निकलते थे, अतः इन दो क्षेत्रों में आंदोलनों को एक साथ मिलाने के लिए कांग्रेस की इतने अधिक वर्षों तक की झिझक संभवतः तर्कसंगत थी।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अपनी तमाम प्रत्यक्ष असफलाताओं के बावजूद राजकोट सत्याग्रह ने रियासत की जनता पर राजनीति का रंग चढ़ाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह केवल संयोग ही नहीं था कि 1947 में रियासतों के भारतीय संघ में शामिल होने में जिस व्यक्ति ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वह कोई अन्य नहीं, बल्कि राजकोट संघर्ष तथा अन्य भारतीय रियासतों की प्रतिरोधात्मक गतिविधियों के संगठनकर्ता सरदार पटेल ही थे। राजकोट जैसे संघर्षों ने रियासतों के शासकों के समक्ष जन प्रतिरोध की शक्ति स्पष्ट कर दी थी। जब 1947 में कई शासकों ने विशेष प्रतिरोध के बिना ही भारतीय संघ में शामिल होना स्वीकार कर लिया, तो उसके पीछे यह भी एक बड़ा कारण था।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सामने सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाएँ।

   i) अधिकांश रियासतों के विपरीत राजकोट रियासत ने शासन में जन सहभागिता का सिद्धांत लागू किया था।

   ii) राजकोट में राजनीतिक गतिविधि के लिए आरंभिक पहल गांधीवादी कार्यकर्ताओं ने की।

   iii) राजकोट सत्याग्रह ने रियासत की जनता पर राजनीति का रंग चढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

2) राजकोट सत्याग्रह में गांधी जी की संबद्धता पर लिखिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

13.7 हैदराबाद में जन आंदोलन

इस परिस्थिति में केवल एक ऐसी रियासत थी जिसने व्याप्त जन प्रतिरोध पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी और वह थी सबसे बड़ी भारतीय रियासत, हैदराबाद। हैदराबाद का शासन उस्मान अली खान के हाथ में था जो कि 1911 से लेकर 1948 तक हैदराबाद के निजाम बने रहे और उन्होंने ही एकीकरण के प्रति सबसे कठोर प्रतिरोध का प्रदर्शन किया। उनका प्रतिरोध अप्रत्याशित नहीं था। वे एक निरंकुश शासक की तरह शासन करने के आदी थे तथा उनकी निजी सम्पदा पूरी रियासत का दस प्रतिशत थी। इस सम्पदा से प्राप्त राजस्व सीधे शासक घराने के खर्चों के लिए पहुँचता था। स्वाभाविक रूप से जनतांत्रिक भारत में एकीकृत होने पर उन्हें केवल नुकसान ही होना था।

13.7.1 निजाम का शासन

हैदराबाद की जनता, जिसमें तीन भिन्न भाषायी समूह, मराठी भाषी (28 प्रतिशत) कन्नड़ भाषी (22 प्रतिशत) तथा तेलुगु भाषी (50 प्रतिशत) थे, उनके क्रुद्ध होने के कारण थे। वे सामंती काश्तकारी संरचना द्वारा उत्पीड़त किए जा रहे थे, जिसमें जागीरदार गैर-कानूनी तरीकों से उन पर लगान लगाते थे, मालगुजारी की ऊँची दरें वसूल करते थे और उनसे बेगार कराते थे। बहुसंख्यक हिन्दू आबादी पर सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से भी दमन चक्र चलाया जाता था, उनकी भाषाओं की उपेक्षा करते हुए उर्दू को विभिन्न तरीकों से प्रोत्साहन दिया जा रहा था। मुसलमानों में सरकारी नौकरियों में, विशेषकर उच्च स्तर पर उनके अनुपात से अधिक प्राथमिकता दी जाती थी। आर्य समाज, जो 1920 के बाद से रियासत में काफी प्रभावशाली बन चुका था, को बुरी तरह दबा दिया गया। इसके अनुयायी सरकारी अनुमति के बगैर धार्मिक गतिविधियाँ भी आयोजित नहीं कर सकते थे। राजनीतिक क्षेत्र में भी निजाम ने ''इत्तेहाद-उल-मुस्लिमिन'' नामक संस्था के गठन में सहयोग किया जो समान धार्मिक आस्था के आधार पर निजाम के प्रति निष्ठा पर केन्द्रित थी। इसी सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक दमन ने हैदराबाद में जन आंदोलन का आधार तैयार किया।

13.7.2 जागृति की शुरुआत

राजनीतिक जागरण की शुरुआत 1920–1922 में असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन के साथ हुई। राष्ट्रीय पाठशालाएँ खुलीं, चरखे काफी लोकप्रिय हुए। नशाबंदी का प्रचार हुआ तथा गांधी जी और अली बंधुओं के चित्र के बिल्ले बेचे गए। हिन्दू-मुस्लिम एकता के जन प्रदर्शन की लोकप्रियता बढ़ रही थी और चूँकि निजाम खिलाफत आंदोलन का खुले आम विरोध करने में झिझकता था, इसलिए जनसभाओं के रूप में खुले आम राजनीतिक गतिविधियों के आयोजन के लिए खिलाफत आंदोलन का प्रभावशाली मंच के रूप में इस्तेमाल किया गया।

इसी के साथ रियासत से मिले हुए ब्रिटिश भारत के क्षेत्र में हैदराबाद संबंधी अनेक राजनीतिक सभाओं का आयोजन किया गया। इन सभाओं में उत्तरदायी सरकार, नागरिक स्वतंत्रता, कर में कमी, बेगारी उन्मूलन तथा धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ आयोजित करने की स्वतंत्रता ये मुख्य माँगें होती थीं। 1930-32 के सविनय अवज्ञा आंदोलन ने राजनीतिक जागरूकता को बल दिया और हैदराबाद के कई राष्ट्रवादी नेता संघर्ष में भाग लेने के लिए ब्रिटिश भारत आ गए। ये लोग जेल भी गए और वहाँ अन्य क्षेत्रों के राष्ट्रवादियों के साथ घुले-मिले। ये लोग एक नये जोश और स्फूर्ति के साथ हैदराबाद लौटे।

इसी दौरान सांस्कृतिक जागरण की प्रक्रिया भी शुरू हो चुकी थी। इस प्रक्रिया ने विभिन्न भाषायी सांस्कृतिक क्षेत्रों द्वारा अपने संगठन तैयार करने का रूप लिया। इनमें से सर्वप्रथम आंध्र जन संघम का गठन हुआ। जिसने बाद में आंध्र महासभा का रूप ले लिया। तेलंगाना क्षेत्र के तेलुगु भाषी लोगों का यह संगठन स्कूल खोलने, समाचार पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित करने, पुस्तकालय खोलने और रिसर्च सोसाइटी आरंभ करने के माध्यम से तेलुगु भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए कार्य कर रहा था। यद्यपि 1940 के पूर्व महासभा ने कोई प्रत्यक्ष राजनीतिक गतिविधि आरंभ नहीं की किन्तु निजाम प्रशासन ने इसके द्वारा आरंभ किए गए समाचार-पत्र, पुस्तकालय तथा स्कूल बन्द करने शुरू किए। 1937 में अन्य दो प्रभावी सांस्कृतिक क्षेत्रों ने भी महाराष्ट्र परिषद तथा कन्नड़ परिषद के नाम से अपने संगठन खड़े किए।

13.7.3 सत्याग्रह

1938 में इन तीनों क्षेत्रों के सक्रिय कार्यकर्ताओं ने एकजुट होकर हैदराबाद रियासत कांग्रेस के नाम से रियासत व्यापी संगठन आरंभ करने का निश्चय किया। इससे पूर्व कि इस संगठन की वास्तव में स्थापना की जाती, प्रशासन ने संगठन पर इस आधार पर प्रतिबंध लगा दिया कि इसमें मुसलमानों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। बातचीत के सभी प्रयास असफल रहे और इस प्रकार सत्याग्रह आरंभ करने का निश्चय किया गया।

सत्याग्रह अक्तूबर, 1938 में आरंभ हुआ तथा इसका नेतृत्व एक मराठी भाषी राष्ट्रवादी स्वामी रामानंद तीर्थ ने किया। इनका रहन-सहन गांधीवादी तथा विचारधारा नेहरूवादी थी, इस सत्याग्रह के एक अंग के रूप में रियासत के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले पाँच सदस्यों के एक समूह ने स्वयं को रियासती कांग्रेस का सदस्य घोषित करते हुए प्रतिबंधित आदेशों का उल्लंघन किया। सत्याग्रह देखने के लिए भारी संख्या में लोग आते और समर्थन व्यक्त करते। यह सिलसिला हफ्ते में तीन बार दो केन्द्रों, हैदराबाद और औरंगाबाद, में दो महीने तक जारी रहा। साथ ही साथ आर्य समाज और हिन्दू नागरिक स्वतंत्रता यूनियन ने भी आर्य समाज के धार्मिक उत्पीड़न के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया। इस सत्याग्रह के धार्मिक उद्देश्य थे और इसने साम्प्रदायिक रूप लेना शुरू कर दिया। ऐसी परिस्थिति में जनता के बीच दो सत्याग्रहों के प्रति भ्रामक विचार पैदा होने का खतरा था। रियासती प्रशासन भी जनता को भ्रमित करने की दिशा में कार्य कर रहा था।

रियासती कांग्रेस तथा गांधी जी ने स्थिति को भाँप लिया। अतः राजनीतिक और धार्मिक मुद्दों का अन्तर बनाए रखने के लिए रियासती कांग्रेस का राजनीतिक सत्याग्रह स्थागित कर दिया गया।

ठीक इसी दौरान विख्यात वंदेमातरम् आन्दोलन भी शुरू हुआ। जिसने बड़े पैमाने पर छात्रों के बीच जोश को प्रेरित किया। हैदराबाद में यह आंदोलन कालेजों के अन्दर अधिकारियों के विरुद्ध हड़ताल के रूप में शुरू हुआ क्योंकि छात्रों को छात्रावास प्रार्थनाकक्ष में वन्देमातरम् गाने की अनुमति नहीं थी। यह हड़ताल शीघ्र ही पूरी रियासत में फैल गयी। छात्र कालेजों से निष्कासित किए जाने लगे। इनमें से काफी छात्र कांग्रेस द्वारा शासित केन्द्रीय प्रांतों में नागपुर विश्वविद्यालय चले गए जहाँ उन्हें प्रवेश दिया गया। यह आंदोलन काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। क्योंकि इस दौर के कई सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता इन्हीं छात्रों के बीच से उभर कर आए।

13.7.4 द्वितीय विश्व युद्ध

द्वितीय विश्व युद्ध 1939 में शुरू हुआ। रियासती सरकार को इस युद्ध के कारण यह अवसर मिल गया कि वह राजनीतिक सुधारों के किन्हीं प्रश्नों पर कोई भी चर्चा करने से इंकार कर दे। रियासती कांग्रेस अभी भी प्रतिबंधित थी। इसी समय सितंबर, 1940 में

स्वयं गांधी जी द्वारा चुने गए छह प्रतिनिधियों और स्वामी जी द्वारा एक और सांकेतिक विरोध का प्रदर्शन किया गया। ये लोग गिरफ्तार कर लिए गए और दिसम्बर, 1941 तक हिरासत में रहे। गांधी जी इस अवस्था में किसी जन आंदोलन के फिर से आरम्भ होने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि अखिल भारतीय संघर्ष की शुरुआत होनी थी और सभी संघर्ष उसी सामान्य कार्यक्रम के एक अंग के रूप में शुरू किए जाने थे।

रियासती कांग्रेस पर प्रतिबंध के फलस्वरूप राजनीतिक गतिविधियों के मंच के रूप में क्षेत्रीय सांस्कृतिक संगठन उभरे। तेलुगु भाषी लोगों की आंध्र महासभा के संबंध में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नयी राजनीति से प्रेरित कार्यकर्ता सभा में एकत्रित हुए और उसे नयी शक्ति और जुझारू स्वरूप प्रदान किया। इस समय एक महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि रविनारायण रेड्डी, जो महासभा के अन्दर नौजवानों के आमूल परिवर्तनवादी समूह के नेता के रूप में उभर कर सामने आए थे और जिन्होंने 1939 के रियासती कांग्रेस सत्याग्रह में हिस्सा लिया था, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ आकृष्ट हो गए। रविनारायण रेड्डी और बी. चेल्ला रेड्डी नौजवान कार्यकर्ताओं का भारी संख्या में समर्थन प्राप्त करने में भी सफल हुए। इसका परिणाम यह रहा कि महासभा की राजनीति में आमूल परिवर्तनवाद का पक्ष मजबूती पकड़ने लगा और किसानों की समस्याएँ महासभा का केंद्रीय मुद्दा बन गयीं।

इसी दौरान ''भारत छोड़ो'' का नारा लगाया गया। चूँकि यह आंदोलन इस समय रियासतों में भी प्रसारित किया जाना था अतः गांधी जी और जवाहरलाल नेहरू दोनों ने अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन की स्थायी समिति, जो अगस्त, 1942 में बम्बई में आयोजित की गयी थी, को संबोधित किया तथा संघर्ष का आह्वान किया। मुख्य नेताओं की गिरफ्तारी के कारण कोई संगठित आंदोलन तो आरंभ नहीं हो पाया लेकिन रियासत के सभी भागों से लोगों ने संघर्ष में हिस्सा लिया और जेल गए। महिलाओं के एक दस्ते ने हैदराबाद शहर के अंदर सत्याग्रह किया और इसी संबंध से सरोजिनी नायडू गिरफ्तार कर ली गयी। प्रतिरोध की एक नयी लहर पूरे वातावरण में फैल गयी।

''भारत छोड़ो'' आंदोलन के प्रभाव का दूसरा पक्ष भी था कि कम्युनिस्ट और गैर-कम्युनिस्ट समूहों के बीच जो दरार पड़ गयी थी वह अब और मजबूत हो गई। दिसम्बर, 1941 में कम्युनिस्ट पार्टी ने ''पीपुल्स वार'' का रास्ता अपनाया जिसने फासीवाद विरोधी युद्ध में ब्रिटेन के समर्थन का आह्वान किया। इस राजनीतिक सोच के कारण कम्युनिस्टों ने भारत छोड़ो आंदोलन को अधिकारिक रूप से समर्थन नहीं दिया और इस प्रकार अन्य राष्ट्रवादियों से स्वयं को अलग कर लिया। चूँकि इस समय भारत में ब्रिटिश सरकार का भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति रवैया बदला हुआ था, इसलिए निजाम ने भी कम्युनिस्ट पार्टी पर से प्रतिबंध हटा लिया और ऐसे समय में जब कि अन्य राष्ट्रवादी जेल में बंद थे, कम्युनिस्ट पार्टी खुले रूप से काम कर सकी। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप 1944 में आंध्र महासभा में फूट पड़ी और गैर-कम्युनिस्ट महासभा से अलग होकर अपना नया संगठन बनाने लगे तथा महासभा पूरे तौर पर कम्युनिस्टों के हाथ में आ गयी।

13.7.5 किसान आंदोलन

जैसे ही युद्ध खत्म हुआ कम्युनिस्टों ने तुरंत ही अपनी स्थिति का लाभ उठाना शुरू किया। 1945-46 के वर्ष, विशेषतया 1946 का उत्तरार्द्ध नालगोंडा जिले में और कुछ हद तक वारंगल और खम्मम जिले के विभिन्न हिस्सों में शक्तिशाली किसान आंदोलन के विकास का दौर था। किसानों को एकजुट करने के लिए जो मुद्दे उठाए गए वे थे : युद्ध-काल में राज्य द्वारा किसानों से वसूली जाने वाली अनाज की लेवी, सरकारी नौकरशाही और जमींदारों द्वारा लिया जाने वाला बेगार और किसानों की जमीन पर

अवैधानिक कब्जा आदि। परिणामस्वरूप आंध्र महासभा के झंडे तले कम्युनिस्टों के नेतृत्व में किसानों और जमींदारों के गुण्डों के बीच सशस्त्र संघर्ष हुआ। बाद में किसानों और रियासत के सशस्त्र सैनिकों के बीच भी संघर्ष हुए। इस जोरदार प्रतिरोध की गिरफ्तारियों, पिटाई और हत्याओं के माध्यम से दमन का भरपूर प्रयास किया गया जिससे कि किसान पस्त हो जाएँ लेकिन महासभा, जो संघम के नाम से जानी जाती थी, के नेतृत्व में किसानों ने अब तक काफी आत्मविश्वास हासिल कर लिया था।

13.7.6 अंतिम चरण

3 जून, 1947 को वाइसरॉय माउंटबैटन ने घोषणा की कि अंग्रेज थोड़े ही समय बाद भारत छोड़े देंगे। इस घोषणा के साथ ही परिस्थिति ने एक नया नाटकीय मोड़ ले लिया। 12 जून, 1947 को निजाम ने घोषणा की कि अंग्रेजों के जाने के बाद वे शासक होंगे। स्पष्ट था कि भारतीय संघ में शामिल होने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी।

रियासती कांग्रेस ने अब खुले तौर पर सामने आकर नेतृत्व संभालने का निश्चय किया। कुछ महीनों पूर्व जब एक नया अलोकतांत्रिक संविधान निजाम द्वारा लोगों पर थोपा गया तो उसके अंतर्गत रियासत में कराए गए चुनावों का सफलतापूर्वक बहिष्कार करके रियासती कांग्रेस ने लोकप्रियता हासिल कर ली थी। निजाम के भारतीय संघ में शामिल होने से इंकार करने पर कांग्रेस ने 16 से 18 जून तक अपना पहला खुला अधिवेशन आयोजित किया और भारतीय संघ में शामिल होने तथा उत्तरदायी सरकार की माँग की। दिल्ली में राष्ट्रीय नेतृत्व की सलाह से रियासती नेता भी निजाम के विरुद्ध संघर्ष की तैयारी करने लगे। संघर्ष सत्याग्रह तथा सशस्त्र प्रतिरोध दोनों ही स्तरों पर करने का निश्चय किया गया।

गिरफ्तारियाँ टालने के लिए हैदराबाद से बाहर ऐक्शन कमेटी गठित की गयी और रियासत की सीमाओं पर शोलापुर, बेजवाड़ा और गडग में इसके दफ्तर स्थापित किए गए तथा केन्द्रीय दफ्तर बम्बई में रखा गया। चंदा भी इकट्ठा किया गया जिसमें जयप्रकाश नारायण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आंदोलन शुरू करने के लिए 7 अगस्त, 1947 का दिन तय किया गया और इसे ''भारतीय संघ दिवस'' में शामिल होने के रूप में मनाने का निश्चय किया गया। आंदोलन की शुरुआत शानदार रही। पूरी रियासत में गाँवों एवं शहरों में प्रतिबंध के विरोध में सभाएँ हुईं और मजदूर तथा छात्रों ने हड़तालें कीं। लोगों की पिटाई की गयी और गिरफ्तारियाँ की गयी तथा राष्ट्रीय झण्डा फहराने पर भी प्रतिबंध लगा। इसके बाद इस प्रतिबंध का हर तरह से प्रतिरोध संघर्ष का मुख्य मुद्दा बन गया। छात्रों और महिलाओं ने इस संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरकार ने दमन का कुचक्र और तेज कर दिया और 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर स्वामी जी तथा उनके सहयोगी गिरफ्तार कर लिए गए। नयी प्रगति यह थी कि शासन द्वारा खुले आम रजाकारों को प्रोत्साहित किया जा रहा था, ये रजाकार इत्तेहाद उल मुस्लेमिन के लड़ाकू स्वयंसेवी थे जो अतिरिक्त सैन्य दस्तों के रूप में कार्य करते थे। रजाकारों को शस्त्र दिए गए और उन्हें निहत्थी जनता पर आक्रमण करने के लिए छोड़ दिया गया। उन्होंने विद्रोही गाँवों के पास अपने शिविर लगाए और गाँवों पर निरंतर सशस्त्र आक्रमण करते रहे। नवम्बर 1947 में निजाम ने भारत सरकार के साथ समझौते पर हस्ताक्षर किए लेकिन इसे दमन के कुचक्र में कोई कमी नहीं आयी।

13.7.7 सशस्त्र प्रतिरोध तथा भारतीय सेना द्वारा हस्तक्षेप

आंदोलन ने अब सशस्त्र प्रतिरोध का भिन्न रूप ले लिया। रियासती कांग्रेस ने रियासत की सीमाओं पर शिविर लगाए तथा कस्टम चौकियों, पुलिस स्टेशनों तथा रजाकारों के शिविरों पर हमले करने शुरू कर दिए। लेकिन रियासत के अन्दर विशेषकर तेलंगाना के जिलों नालगोंडा, वारंगल और खम्मम जिलों में सशस्त्र प्रतिरोध का नेतृत्व कम्युनिस्टों

के हाथ में रहा। उन्होंने किसानों को ''दलम्'' में संगठित किया और रजाकारों पर आक्रमण करने के लिए उन्हें हथियारों के इस्तेमाल का प्रशिक्षण दिया। अनेक क्षेत्रों में उन्होंने जमींदारों पर भी आक्रमण किया। कुछ लोगों को मार डाला तथा अनेक लोगों को शहरों की ओर खदेड़ कर उनकी अनाधिकृत भूमि को जमीन के मालिकों तथा उन लोगों के बीच बाँट दिया जिनके पास थोड़ी अथवा बिल्कुल जमीन नहीं थी।

13 सितम्बर, 1948 को भारतीय सेना द्वारा हैदराबाद पर आक्रमण करके निजाम को आत्म-समर्पण कराने तथा रियासत को भारतीय संघ में शामिल करने के साथ नये चरण का आरंभ हुआ। जनता ने भारतीय सेना का स्वागत मुक्ति सेना के रूप में किया, इसमें किसान भी शामिल थे चारों ओर बड़ा उल्लास था तथा बड़े उत्साह और स्वतंत्रता की अनुभूति से राष्ट्रीय झंडा फहराया गया।

बोध प्रश्न 3

1) हैदराबाद की रियासत में प्रचलित उत्पीड़न के स्वरूप पर लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सामने सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाएँ।

i) हैदराबाद की जनता पर असहयोग आंदोलन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

ii) हैदराबाद रियासत के छात्रों के राजनीतिकरण में वंदेमातरम आंदोलन ने प्रमुख भूमिका निभाई।

iii) निजाम भारतीय संघ में शामिल नहीं होना चाहते थे।

13.8 सारांश

हैदराबाद और राजकोट की दो रियासतों के संघर्ष का इतिहास देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के बीच समानताओं को उजागर करता है। जमींदारी व्यवस्था के अभिशाप : भारी कर, निरक्षरता तथा सामाजिक पिछड़ेपन जैसी आर्थिक और सामाजिक समस्याएँ लगभग समान थीं। लेकिन ये समस्याएँ भी देशी रियासतों में शासकों के निरंकुश शासन के कारण अपेक्षाकृत अधिक गंभीर थीं। राजनीतिक क्षेत्र में भी रियासतें अधिक पिछड़ी हुई थीं और ब्रिटिश भारत की अपेक्षा वहाँ नागरिक स्वतंत्रता तथा उत्तरदायी सरकार की कमी थी।

परिणामस्वरूप, ब्रिटिश भारत की अपेक्षा रियासतों में राजनीतिक जागरूकता तथा राजनीतिक गतिविधियों का स्तर लगभग एक दशक या उससे भी अधिक पीछे था और जब राजनीतिक आंदोलन उभरे भी तो मतभेद और विरोध की खुली अभिव्यक्ति की संभावना बहुत कम थी। सामान्यतः इसके परिणामस्वरूप भूमिगत गतिविधियाँ आरंभ करने तथा इसके हिंसात्मक स्वरूप ले लेने की दिशा में संभावनाएँ प्रबल रहती थीं। ऐसा केवल हैदराबाद में नहीं बल्कि पटियाला, त्रावणकोर, और उड़ीशा की रियासतों में भी हुआ। इससे अन्य राष्ट्रवादियों की अपेक्षा कम्युनिस्टों और अन्य वामपंथी समूहों को अधिक सफलता मिली क्योंकि वे उत्पीड़ित जनता के शक्तिशाली दमन के विरुद्ध संगठित करने में अन्य राष्ट्रवादियों की अपेक्षा हिंसा का सहारा लेने में कम झिझकते

थे। अतः आश्चर्य नहीं कि हैदराबाद, पटियाला और त्रावणकोर जैसी रियासतों में, जहाँ हिंसात्मक कार्यनीति अपनायी गयी कम्युनिस्टों ने अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय रियासतों में स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास से यह भी स्पष्ट होता है कि पूरे देश की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस रियासतों के प्रति अपनी नीति में निरंतर परिवर्तन करती रही थी। जैसे-जैसे आंदोलन तेज होता गया, कांग्रेस अधिक स्पष्ट और सहासिक कदम उठाने में समर्थ होती गयी और 1942 तक पहुँचते-पहुँचते देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के आंदोलनों में कोई विशेष फर्क नहीं माना गया। 1947-48 में रियासतों द्वारा भारतीय संघ से अलगाव और स्वतंत्रता की सभी बातों के विरुद्ध कांग्रेस की सुस्पष्ट स्थिति तथा इसके लिए बल प्रयोग तक की तैयारी, देश के अनेक टुकड़ों में विभाजन को रोकने में महत्वपूर्ण कारण थे। इस प्रकार कांग्रेस ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा सुरक्षित रखे गए सामंतशाही के विशालतम अवशेषों को पराजित करने सफलता अर्जित की।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में रियासतों की जनता का सामान्य राजनीतिकरण तथा उनमें प्रजातंत्र तथा नागरिक स्वतंत्रता से संबंधित विचारों के प्रसार का उल्लेख होना चाहिए। देखिए भाग 13.2

2) आप रियासतों के प्रति कांग्रेस की नीतियों में व्याप्त जटिलताओं का विशेष उल्लेख कर सकते हैं। देखिए भाग 13.4

3) देखिए उपभाग 13.4.1

4) i) ✓ ii) ✗ iii) ✓

बोध प्रश्न 2

1) i) ✓ ii) ✓ iii) ✓

2) देखिए उपभाग 13.6.5

बोध प्रश्न 3

1) आप आर्थिक और साथ ही धार्मिक उत्पीड़न की प्रक्रिया का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 13.7.1

2) i) ✗ ii) ✓ iii) ✓